लेख

1

गांधी जी–कर्मयोगी और लेखक के रूप में

महात्मा गांधी जिन्हें हम 'राष्ट्रपिता' या 'बापू' के नाम से भी जानते है। गांधी जी का मानना है कि कोई भी कार्य स्वयं में छोटा या बड़ा नहीं होता। मनुष्य को बड़ा बनाते है – उसका व्यवहार और अच्छा आचरण। गांधी जी ने हमें न केवल सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखाया बल्कि उच्च नैतिक आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरित भी किया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित अनुबंद्योपाध्याय लिखित पुस्तक 'बहुरूप गांधी' में गांधी जी के व्यक्तित्व के विविध रूपों की चर्चा की गई है। उनमें से गांधी जी के व्यक्तित्व के दो रूप लेखक और कर्मयोगी की चर्चा इस लेख में की गई हैं। जानने के लिए पढ़िए यह लेख।

कर्मयोगी गांधी

दक्षिण अफ्रीका में एक नामी भारतीय बैरिस्टर अपने मुवक्किलों को सलाह दिया करते थे कि मुकदमेबाजी में अपने को बर्बाद न करो और अपना झगड़ा अदालत के बाहर आपस में तय कर लो या पंच करा लो। अपने अवकाश के समय वह हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों, बौद्धों और जैनों आदि की धार्मिक पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे ज्ञान–दर्शन आदि की अन्य पुस्तकें भी पढ़ते थे। इन पुस्तकों के अध्ययन और आत्म–मंथन से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हर व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ शारीरिक मेहनत करना चाहिए, केवल दिमागी काम करना ही काफ़ी नहीं है। साक्षर और निरक्षर, डॉक्टर और वकील, नाई और भंगी, सभी को उनके काम के लिए बराबर वेतन मिलना चाहिए।

उन्होंने धीरे–धीरे अपने जीवन का रंगढंग बदल लिया और जो भी काम उनके सामने होता उसमें हाथ बँटाने लगे। उन्होंने एक आश्रम स्थापित कर उसमें अपने मित्रों और परिवार के सदस्यों के साथ मिलकर रहने का निश्चय किया। उनके कुछ यूरोपीय मित्र भी इस आश्रम में रहने के लिए आए। सब आश्रमवासी खेती–बाड़ी और साधारण किसानों की तरह कठिन श्रम करते थे। आश्रम में कोई नौकर नहीं रखा गया था। फार्म या आश्रम में हिंदू और मुसलमान, ईसाई और पारसी, ब्राह्मण और शूद्र, मजदूर और बैरिस्टर, गोरे और काले, सभी लोग एक बड़े परिवार के सदस्यों की तरह रहते थे। वे सब लोग एक ही कमरे में बैठकर, एक ही रसोई में बना भोजन साथ–साथ खाया करते थे। उनका भोजन सादा होता और

उनके कपड़े मोटे-झोटे। हर सदस्य को अपने मासिक खर्च के लिए चालीस रुपए मिलते थे। उक्त बैरिस्टर महोदय भी उतना ही खर्च करते थे, यद्यपि उस समय वे वकालत से प्रति मास चार हज़ार रुपए कमाते थे। अन्य आश्रमवासियों की तरह वह भी नियमपूर्वक कड़ी मेहनत करते और चौबीस घंटे में सिर्फ पाँच-छः घंटे आराम करते थे।

एक बार फार्म में टीन की छत वाली झोपड़ी बनाई जा रही थी। उसकी छत डालने के लिए वे ऊपर चढ़ गए। वे मोटे कपड़े की नीली 'ओवरआल' (काम की पोशाक) पहने हुए थे, जिसमें कई जेबें थीं। किसी में छोटे-बड़े पेंच और कीलें भरी थीं। एक जेब से हथौड़ी झाँक रही थी। एक छोटी आरी और बर्मी उनकी कमर-पेटी से लटक रही थी। कई दिनों तक वे कड़ी धूप में अपनी हथौड़ी और आरी से काम में जुटे रहे।

एक दिन, दोपहर का भोजन करने के बाद वे किताबों की एक रैक बनाने बैठे। लगातार सात घंटे तक काम करके उन्होंने छत तक ऊँची रैक तैयार कर डाली। आश्रम को आने वाली एक सड़क को पक्का करने की ज़रूरत थी, लेकिन उनके पास इसके लिए काफ़ी धन नहीं था। वे रोज़ टहलने जाते थे और लौटते समय रास्ते में पड़े छोटे-छोटे पत्थरों को इकट्ठा कर लाते। उनके साथियों ने भी उनका अनुकरण किया और थोड़े ही समय में सड़क पर बिछाने के लिए काफ़ी रोड़ी और पत्थर इकट्ठा हो गया। इस प्रकार वह स्वयं कार्य करके दूसरों को काम करना सिखाते। यहाँ तक कि आश्रम के बच्चे भी बागवानी करने, खाना पकाने, झाड़ू-बुहारु, बढ़ईगीरी, चमड़े का काम और छापेखाने के काम में भाग लेते थे। सवेरे-सवेरे बैरिस्टर साहब चक्की से गेहूँ पीसते, उसके बाद पोशाक पहन कर पाँच-छह मील पैदल चल कर अपने दफ़्तर जाते थे। अपने बाल भी वे स्वयं काट लेते और अपने कपड़े भी खुद धोकर इस्त्री कर लिया करते थे। आश्रम में अलग से कोई धोबी-नाई नहीं लगाते थे। एक बार एक खान में काम करने वाले भारतीय मज़दूर को प्लेग हो गया तो पूरी रात जागकर उन्होंने उसकी सेवा-सुश्रुषा की। कोढ़ी के घाव धोने अथवा पाखाना साफ़ करने में उन्हें घिन नहीं लगती थी। आलस, भय या घृणा किसे कहते हैं, यह उन्हें मालूम ही नहीं था। वे अपने

अखबार के लिए लिखते, स्वयं उन्हें टाइप करते, और अपने प्रेस में जाकर खुद उसे कंपोज करते थे और ज़रूरत पड़ने पर हाथ से मशीन चलाकर उसे छापते भी थे। वे किताबों की जिल्दबंदी में भी कुशल थे। जो हाथ ओजस्वी लेख और पत्र लिखता, चरखे पर सूत कातता, करघे पर बुनाई करता, सूई से महीन रफ़ू करता, नए-नए व्यंजन पकाता और फल के वृक्षों तथा सब्ज़ी के पौधों की देखभाल करता था, वह बागवानी, कुएँ से पानी खींचने, लकड़ी काटने और भारी-से-भारी सामान उतारने और ढोने में भी उतना ही कुशल था।

अफ्रीका के जेल में उन्हें प्रतिदिन नौ घंटे कठोर पथरीली धरती को फावड़े से खोदना पड़ता था या कंबलों के फटे हुए टुकड़े सीने पड़ते थे। बहुत थक जाने पर वे ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि मुझे शक्ति दो। कोई भी दिया गया काम पूरा न कर सकने का विचार भी उन्हें असह्य था।

आश्रम से सबसे निकट का शहर भी चालीस मील दूर था। कई बार चालीस मील पैदल चलकर शहर जाकर वह आश्रम के लिए सामान लाए। एक बार वे एक दिन में पचपन मील चले। दक्षिण अफ्रीका में युद्ध छिड़ने पर वे चिकित्सा-टुकड़ी में स्वयंसेवक हो गए और एक बार उन्होंने स्ट्रेचर पर घायल सिपाहियों को एक साँस में तीस से चालीस मील तक ढोया। अठत्तर वर्ष की आयु में भी वे हफ्तों तक लगातार अठारह घंटे काम करते थे। इस आयु में वे कताई के सिवा अन्य कोई शारीरिक श्रम नहीं कर सकते थे लेकिन जाड़े की सुबह में वे गाँव की पगडंडियों पर नंगे पैर प्रतिदिन तीन से पाँच मील तक टहल सकते थे। काम करने की इस लगन और शक्ति के लिए उनके दक्षिण अफ्रीकी सहयोगियों ने उन्हें 'कर्मवीर ' की उपाधि दी।

ये कर्मवीर बैरिस्टर थे–मोहनदास करमचंद गांधी। उनका जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को पोरबंदर में हुआ था।

लेखक

गांधी ने बहुत लिखा है और उन्हें बहुत उच्च कोटि का लेखक माना जाता है। अपने लेखों में से बहुतों को गांधी ने पुस्तक का रूप नहीं दिया। ये या तो सत्य, अंहिसा, स्वदेशी और चरखा पर लिखे गए लेख थे या महिलाओं, विद्यार्थियों या राजाओं को दिए गए अभिभाषणों के संकलन थे। वे बड़ी नपी-तुली भाषा में अपनी बात करते थे। वे लच्छेदार शब्दों के पीछे कभी नहीं जाते थे। उनका उद्देश्य लोगों

को चमत्कृत करना नहीं, उनसे अपने दिल की बात करना था। उनकी एक सीधी-सादी किंतु निराली शैली थी, जिसमें वह अपने हृदय को उड़ेल कर रख देते थे और जो दिल को छू लेती थी। उनकी भाषा बहुत सरल और अर्थ बिल्कुल स्पष्ट होता था। उनकी भाषा उतनी ही सरल व सहज थी जितना कि उनका जीवन था। कई अँग्रेज़-लाटों ने यह स्वीकार किया है कि गांधी अपनी बात बहुत सीधे ढंग से कहते थे। उसमें घुमाव-फिराव नहीं होता था और वे इतनी अच्छी अँग्रेज़ी में अपने विचार प्रकट करते थे जिसमें हर शब्द का चुनाव बहुत अच्छा होता था। गांधी का कहना था कि ''मैं बिना सोचे-विचारे एक शब्द भी नहीं लिखता या बोलता।'' आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक ने जिन्होंने लंदन में गोलमेज सम्मेलन में गांधी के कुछ वक्तव्यों का मसविदा तैयार करने में उनकी मदद की थी, कहा था, ''अँग्रेज़ी के अव्यय (उपसर्ग) का प्रयोग जितना सही वे करते थे उतना सही करने वाला आज तक मुझे कोई भारतीय नहीं मिला। मैं मसविदा तैयार करने में बहुत मेहनत करता था। गांधी मेरे मसविदे पर एक नज़र डालते थे और एक दो अव्यय बदल देते थे। इससे मानो चमत्कार हो जाता था और मेरी बात गांधी की बात बन जाती थी।''

अँग्रेज़ी भाषा के अच्छे लेखकों की पुस्तकों और बाइबिल को उन्होंने बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा था और शायद इसी से उन्होंने शब्दों के सही चुनाव करने की कला सीखी थी। उन्होंने विविध विषयों की पुस्तकें पढ़ी थीं और जो कुछ पढ़ा था उसे गुना भी था।

लेखक के रूप में उनका प्रथम प्रयास 'लंदन गाइड' नामक पुस्तिका थी जो उन्होंने भारतीय छात्रों के लिए लिखी थी। उस समय वे तरुण ही थे। इस पुस्तिका में लंदन के बारे में उपयोगी सूचनाएँ दी गई थीं। इसके बाद उन्होंने दो छोटी पुस्तिकाएँ लिखीं थी– 'ऐन अपील टु एवरी ब्रिटन' और 'दि इंडियन फ्रेंचाइज़'। पहली पुस्तिका में भारतीयों की दशा और दूसरी पुस्तक में वहाँ के भारतीयों के मताधिकार का इतिहास दिया गया था। इसके बाद उन्होंने 'ग्रीन पैंफलेट' (हरी पुस्तिका) लिखी जिसकी भाषा सरकारी रिपोर्टों की तरह तथ्यात्मक थी। इसके प्रकाशन के एक महीने बाद उन्होंने इसका दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित किया। इस पुस्तिका का सारांश जब दक्षिण अफ्रीका के अखबारों में छपा तो पढ़कर वहाँ के यूरोपीय लोग बहुत ही चिढ़ गए। नतीजा यह हुआ कि जब इसके बाद गांधी भारत से वापस दक्षिण अफ्रीका पहुँचे तो क्रुद्ध गोरों ने उन्हें घेर लिया और उनकी जान लेने को कोशिश की। गांधी को यह कटु अनुभव हुआ कि उनकी लिखी चीजों के भाव को संक्षेप में ठीक से व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनको यह कमाल हासिल था कि वह अपनी बात कम-से-कम शब्दों में, पर प्रभावशाली ढंग से कह सकते थे। काँग्रेस के संविधान और काँग्रेस के अनेक प्रस्तावों का मसविदा उन्हीं का तैयार किया हुआ है।

भोजन के संबंध में अपने प्रयोगों को गांधी ने 'ए गाइड टु हेल्थ' नाम पुस्तक के रुप में

प्रकाशित किया। यह पुस्तक गुजराती 'इंडियन ओपीनियन' में छपे उनके मूल गुजराती लेखों का अँग्रेज़ी में अनुवाद थी। इस पुस्तक का अन्य कई यूरोपीय और भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और भारत में तथा विदेशों में इसे खूब पढ़ा गया।

उनके दिमाग में जब कोई विचार जम जाता था तब वह पूरे विश्वास के साथ उसको लिपिबद्ध करते थे और इस बात से बिल्कुल नहीं डरते थे कि लोग उन पर हँसेंगे। जब उन्हें लिखने की धुन होती थी तब वह चलती हुई रेलगाड़ी और पानी में हिलते जहाज़ पर भी लिखते थे। पूरी-की-पूरी 'हरी पुस्तिका' उन्होंने सन् 1896 में समुद्री जहाज़ में भारत की यात्रा के समय लिख डाली थी। इसी प्रकार सन् 1909 में इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका जाते हुए जहाज़ पर उन्होंने 'हिंद स्वराज' नाम पुस्तक लिखी थी, जिसमें आधुनिक सभ्यता की बड़ी कटु आलोचना की गई है। इस पुस्तक को उन्होंने जहाज़ का नाम छपे कागज़ पर लिखा था। लिखते-लिखते जब उनका दायाँ हाथ थक जाता था, तब वह बाएँ हाथ से लिखने लगते थे और इस प्रकार उन्होंने दस दिन के अंदर यह पुस्तक लिख डाली। इस पुस्तक को पढ़कर टालस्टाय ने कहा था, 'इसमें अहिंसक संघर्ष का प्रश्न केवल भारत के लिए भी नहीं, सारे संसार के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।' राष्ट्र निर्माण कार्य के विषय पर 'कंस्ट्रक्टिव प्रोग्राम' नामक पुस्तिका उन्होंने रेलगाड़ी में यात्रा करते समय लिखी थी। वे जो कुछ लिखते थे उसमें काटकूट बहुत कम होती थी और उसमें बाद में शायद ही कभी किसी परिवर्तन की ज़रुरत होती थी। इसका कारण गांधी के शब्दों में 'सत्य के एक पुजारी का आत्मसंयम' था अर्थात् एक-एक शब्द को तोलकर कहने की आदत के कारण ऐसा लेख लिखना संभव हो सका।

किसी विचार का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हुए बिल्कुल उपयुक्त शब्दों का चुनाव करने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। वे शाब्दिक अनुवाद नहीं करते थे बल्कि उसी भाव का शब्द और मुहावरा रखते थे। अँग्रेज़ी के शब्द 'डेथ डांस' का अनुवाद उन्होंने 'पतंग नृत्य' किया। रस्किन लिखित 'अन टु दिस लास्ट' नामक पुस्तक पढ़कर गांधी को लगा कि उसमें उनके हृदय के विचारों की प्रतिध्वनि है। वह उन्हें इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने गुजराती में उसका अनुवाद कर डाला। यह 'सर्वोदय' के नाम से प्रकाशित हुआ। गांधी ने कार्लाइल की कुछ रचनाओं के अंश और मुस्तफा कमाल पाशा की जीवनी के कुछ अंश भी अँग्रेज़ी से गुजराती में अनुवाद करके छापे। गांधी की लिखी 'स्टोरी ऑफ ए सत्याग्रही' प्लेटो रचित 'डिफेंस एण्ड डेथ ऑफ साक्रेटीज' (सुकरात का मुकदमा) पर आधारित है। गांधी जब जेल में थे तब उन्होंने आश्रम भजनावली और भारत के कुछ संत कवियों की रचनाओं का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया था। इन कवियों की रचना 'सांग्स फ्रॉम द प्रिज़न' नाम से प्रकाशित हुई।

गांधी ने अपनी आत्मकथा गुजराती में लिखी। इससे गुजराती भाषा में एक नया युग शुरू

हुआ। इसकी भाषा में ऐसी सरल और दिल को छूने वाली है जिसने गुजराती के लेखकों पर बड़ा प्रभाव डाला और पंडितों की मंडली से निकलकर गुजराती भाषा जनता की भाषा बन गई। इस आत्मकथा के अँग्रेज़ी अनुवाद को विद्वानों ने एक उच्च कोटि की साहित्यिक रचना माना है। यह आत्मकथा न केवल संसार के एक महापुरूष के मानवीय व्यक्तित्व की जीती-जागती झाँकी है बल्कि इसमें उन्होंने अपने माता-पिता, पत्नी और इष्ट मित्रों के मर्मस्पर्शी चित्र खींचे हैं और रोचक संवादों और नाटकीय घटनाओं का ऐसा वर्णन किया है कि पाठक की उत्सुकता अंत तक बनी रहती है और पुस्तक उपन्यास की तरह रोचक लगती है। इस पुस्तक का भारतीय भाषाओं के अलावा अँग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी, जर्मनी, चीनी तथा जापानी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है और इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। इसकी गिनती संसार की श्रेष्ठतम आत्मकथाओं में है।

गांधी के सभी लेखों में सत्य और उच्च नैतिक आदर्शों पर ज़ोर दिया गया है। लेकिन इस कारण ऐसा नहीं लगता है कि कोई आदमी ऊँचे आसन पर बैठकर उपदेश दे रहा है, क्योंकि वे अपने अनुभव की बात कहते हैं। उन्होंने बच्चों के लिए एक 'बाल पोथी' लिखी और 'नीति धर्म' नामक एक पुस्तक की रचना की। वह बच्चों को किसी ऐसी बात का उपदेश नहीं देना चाहते थे, जिसका प्रयोग बच्चे अपने जीवन में न कर सकें। गांधी जेल से आश्रम के बच्चों को जो पत्र लिखते थे वे मज़ेदार होने के साथ ही शिक्षाप्रद भी होते थे। गांधी पत्र बहुत लिखते थे और एक-एक दिन में अपने हाथ से पचास-पचास पत्र तक लिख डालते थे। उनके लगभग एक लाख पत्रों के संकलन का उनकी रचनाओं में विशिष्ट स्थान है।

गांधी 'कला के लिए कला' सिद्धांत को नहीं मानते थे। उनके लिए सच्ची कला वही है जो सत्य पर आधारित हो और केवल उसी साहित्य का कुछ मूल्य है जो मनुष्य को ऊँचा उठाने में मदद करे। भारत के करोड़ों भूखे-नंगे इंसानों के लिए वह सरल और अच्छी कहानियाँ तथा ऐसे पद और दोहे चाहते थे जिन्हें खेतों में हल चलाते हुए किसान अपने बैलों को हाँकते समय आनंद से झूमते हुए गा सकें और गंदी गालियाँ बकना भूल जाएँ। एक बार साहित्यकारों के एक सम्मेलन में उन्होंने कहा था, 'क्या आपने कभी इन करोड़ों मूक लोगों की माँग और आशाओं पर भी ध्यान दिया है? आखिर किन लोगों की खातिर आप साहित्य रचते हैं। मैं उन लोगों को क्या पढ़कर सुनाऊँ?'' उन्होंने अच्छे लेखन के एक आदर्श नमूने के रूप में डीन फरार रचित ईसा मसीह की जीवनी का दृष्टांत दिया जो ऐसी सरल और सुबोध भाषा में लिखी गई है जिसे इंग्लैंड का सर्वसाधारण समझ सकता है। गांधी ने 'इंडियन ओपीनियन' के गुजराती संस्करण में कई विशिष्ट पुरुषों और स्त्रियों के रेखाचित्र लिखे। एक बार उनसे उनके प्रिय कवि और दार्शनिक रायचंद भाई की जीवनी लिखने का अनुरोध किया गया। गांधी ने कहा, ''उनकी जीवनी लिखने के लिए मुझे बहुत तैयारी करनी होगी। उनके घर और

नगर को देखना होगा और उनके मित्रों, सहपाठियों, संबंधियों और अनुयायियों से मिलना होगा।'' इससे पता चलता है कि लिखने में गांधी तथ्यों का कितना ध्यान रखते थे।

गांधी लिखने और बोलने में अक्सर महाभारत, रामायण, राम, कृष्ण, मुहम्मद और ईसा की कथाओं से दृष्टांत दिया करते थे। इससे उनकी बात साधारण लोगों को बहुत अच्छी तरह समझ में आ जाती थी। गांधी की वाणी और लेखनी में जनता के हृदय को स्पर्श करने की जो अद्‌भुत शक्ति थी उसका यही मूल था। बुरी बातों की निंदा करने में गांधी कभी कसर नहीं रखते थे। चाहे गोरे लोग काले लोगों पर अत्याचार करें या स्वार्थी काँग्रेसी सदस्य सफेद खद्दरधारी गुंडे हो जाएँ, सब पर गांधी की कलम, चाबुक की तरह पड़ती थी। इस संबंध में जो बातें उन्होंने कहीं थी उनमें से बहुत सी आज सच साबित हो रही हैं। भारत के एक बड़े लाट लार्ड कर्जन ने एक बार कह दिया कि 'सत्य का आदर्श बहुत हद तक पश्चिम की कल्पना है।' इसके विरोध में गांधी ने रामायण, महाभारत, वेदों आदि के उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि भारत में सत्य का पालन अत्यंत प्राचीन काल से होता आ रहा है और लार्ड कर्जन से कहा कि भारत के ऊपर जो निराधार अपमानजनक लांछन लगाने की आपने कोशिश की है उसे वापस लें। गांधी ने एक बार कहा था, ''हज़रत मुहम्मद और उनका शांति का संदेश अब कहाँ है? यदि आज मुहम्मद साहब भारत आएँ तो अपने बहुत से तथाकथित अनुयायियों की हरकतों को देखकर वह कह देंगे कि ये मेरे नहीं, और मुझे अपना सच्चा अनुयायी मानेंगे। वैसे ही ईसा मसीह भी मुझे अपना असली ईसाई स्वीकार करेंगे। पश्चिम में ईसाइयत है ही नहीं, होती तो वहाँ युद्ध न होते।''

गांधी कहा करते थे, ''कवि तो अपने कल्पना लोक में रहता है, लेकिन मैं तो चरखे का दास हूँ। मैं स्वप्नलोक में नहीं, भूख और अभाव की दुनिया में रहता हूँ।'' लेकिन गांधी के लेखों में ऐसे बहुत से अंश हैं जिनमें कवित्व छलकता है। गांधी में कुछ ऐसी साहित्यिक प्रतिभा थी जिससे चंद शब्दों में ही वह जीता-जागता चित्र खींच देते थे। जैसे–''मैसूर के एक प्राचीन मंदिर में मैंने एक छोटी-सी मूर्ति देखी थी। यह मूर्ति जैसे मुझसे बोल रही थी। एक अर्द्धनग्न स्त्री की मूर्ति, जो कामवाण से विद्ध होकर छटपटा रही थी, जो पराजित कामदेव का प्रतीक था। उसकी अंगभंगी से काम-वेदना, बिच्छू की दंष जैसी यातना, साफ़-साफ़ साकार हो उठी थी।''

''क्या आपने उड़ीसा में नर-कंकालों को देखा है? नर-कंकालों के इस भूखे, नंगे और गरीब प्रदेश में ऐसे शिल्पी हुए हैं, जिन्होंने हड्डी, सींग और चाँदी की चीजों में चमत्कार भर दिया है। जाइए और जाकर देखिए कि एक दुबले-पतले व्यक्ति की आत्मा भी किस प्रकार निर्जीव सींग और धातुओं में जीवन फूँक सकती है। देखिए एक गरीब कुम्हार ने मिट्टी से क्या चमत्कार पैदा कर दिखाया है?''

''वह स्थान एक नदी के तट पर था। वृक्षों और झाड़ियों से ढकी छोटी-छोटी पहाड़ियों के

बीच से नदी बहती थी। नदी की तलहटी बलुई थी, चिकनी मिट्टी की नहीं। मंच नदी के जल पर बना था। मंच के सामने की सड़क के दोनों और बारह हज़ार से अधिक नर-नारी बिल्कुल शांत बैठे थे।''

''सवेरे तड़के मैंने मलाबार में प्रवेश किया। परिचित स्थानों से गुज़रते हुए, अचानक मेरी आँखों के सामने एक 'नयाड़ी' चेहरा उभर आया जिसे मैंने अपनी पिछली यात्रा के समय देखा था। अस्पृश्यता पर बातचीत हो रही थी कि तेज़ आवाज़ सुनाई पड़ी। जो लोग मुझसे बात कर रहे थे, उन्होंने कहा, 'हम आपको एक जीता-जागता नयाड़ी दिखाएँगे।' सार्वजनिक सड़क उसके लिए नहीं थी। नंगे पाँव दबा-दबा वह खेत पर चल रहा था। मैंने उसे पास बुलाया। घबराता और काँपता हुआ वह आया। मैंने उसे बताया कि मेरी तरह ही तुम्हें भी आम सड़क पर चलने का अधिकार है। उसने कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता। मैं सड़क पर नहीं चल सकता।' आप मुझे अपने साथ हँसी-मज़ाक करते देख रहे हैं, लेकिन आप यह जान लें कि इस हँसी-मज़ाक में भी उस दीन नयाड़ी का चेहरा मुझे नहीं भूलता। मलाबार की पूरी यात्रा में यह याद मुझे सताती रहेगी।''